इकाई 32 देशी रियासतों में जन संघर्ष

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपके समक्ष 1920-1947 के दौरान देशी रियासतों में उठे जन संघर्षों की एक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- राष्ट्रीय आंदोलन तथा देशी रियासतों में उठे जन संघर्ष के बीच तुलना कर सकेंगे,
- इन राज्यों की जनता को इन संघर्षों के लिए तैयार करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका पर विचार कर सकेंगे,
- इस विषय पर कांग्रेस की नीति में परिवर्तनों को बता सकेंगे, तथा
- इन संघर्षों की अगुआई करने में कम्युनिस्टों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों ने भारत में अपना आधिपत्य एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया द्वारा स्थापित किया था।

औपनिवेशिक शासन से पहले की राजनीतिक ताक़तें जो भारत में पहले से विद्यमान थीं, उन पर अंग्रेज़ों ने प्रत्यक्ष विजय प्राप्त करके, डरा धमका कर अथवा उन्हें मिलाकर यह आधिपत्य प्राप्त किया था। परिणामतः इस उपमहाद्वीप के 3/5 भाग पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन तथा शेष 2/5 भाग पर "अप्रत्यक्ष सत्ता" अंग्रेज़ों की सर्वोपरि (Paramountcy) सत्ता क़ायम हुई। अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र अभी भी देशी राजाओं द्वारा परिचालित थे। सामंती भारत अथवा भारतीय रियासतों के अंतर्गत सैकड़ों रियासतें शामिल थीं, जिनमें से हैदराबाद, मैसूर, अथवा कश्मीर जैसी रियासतों का क्षेत्रफल कई यूरोपीय देशों के बराबर था। कुछ दूसरी रियासतें बहुत छोटी थी और उनकी आबादी कुछ हज़ार की ही थी तथा कई हज़ार रियासतें इन छोटी-छोटी रियासतों के बीच की श्रेणी में आती थीं।

Praja Parishad Jindabad !!! Responsible Govt. Kayam ho !!!

JAI HIND

PARISHAD TRACT

THE DREAMLAND OF RESPONSIBLE GOVERNMENT IN BIKANER

By

Damodar Prasad Singhal

Issued by:

THE PUBLICITY OFFICER

BIKANER RAJYA PRAJA PARISHAD, BIKANER

1st July 1946

ARAVALI PRESS, ALWAR.

चित्र 20. रियासतों की जनता की मांगों के विषय में छपी एक पुस्तिका का कवर पेज

भारतीय रियासतों पर अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि सर्वोपरि सत्ता स्वीकार किए जाने के बदले में शासकों को अंग्रेज़ों ने बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के ख़तरों के विरुद्ध सुरक्षा देने का वचन दिया हुआ था। फलतः शासकों ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए नाममात्र को भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं समझी। अधिकांश रियासतें निरंकुश थीं। शासक मनमाने ढंग से राजस्व थोपते थे। ये शासक समय-समय पर यूरोपीय देशों की यात्रा करते थे और काफी लम्बा समय वहीं व्यतीत करते थे। भारत में अपने विदेशी मेहमानों के मनोरंजन के लिए उन्हें शिकार पर ले जाते थे। इनके हरम में औरतों की संख्या निरंतर बढ़ती रहती थी। इस तमाम फ़िज़ूल खर्ची का बोझ असहाय जनता को ही सहना पड़ता था।

कुछ अपेक्षाकृत बेहतर शासकों ने अक्सर अंग्रेज़ों के प्रतिरोध के बावजूद प्रशासनिक और राजनीतिक सुधार लाने तथा औद्योगिक विकास को बढ़ाने का भी प्रयास किया। उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के भी गंभीर प्रयास किये तथा सरकार में जनता को शामिल करने की भी स्वीकृति दे दी। लेकिन इस प्रकार की रियासतों की संख्या बहुत ही कम रही। अधिकतर रियासतें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हर दृष्टि से पिछड़ी रहीं और रूढ़िवादी ढर्रे पर

चलती रही। ऐसी परिस्थिति के लिए बहुत कुछ अंग्रेज़ ही ज़िम्मेदार थे जो विशेषकर बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय रियासतों की तमाम प्रतिक्रियावादी परंपराओं को यथावत बनाए रखने को तत्पर थे और उत्तरदायी सरकार बनाने की ओर कोई क़दम नहीं उठाना चाहते थे। दरअसल इन राजाओं की ओर से राष्ट्रीय आंदोलन को किसी प्रकार का समर्थन अंग्रेज़ी शासकों को असह्य था। इन रियासतों में अपने प्रतिनिधियों के द्वारा इन पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी।

32.2 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव

फिर भी, जैसा कि अपरिहार्य था, ब्रिटिश भारत में अपनी जड़े मज़बूत करने के बाद राष्ट्रीय आंदोलन इन रियासतों के लोगों को भी प्रभावित करने लगा। राष्ट्रवादियों के प्रजातंत्र, उत्तरदायी सरकार तथा नागरिक स्वतंत्रता (Civil liberty) से संबंधित विचारों ने तुरंत ही वहाँ की जनता को आकृष्ट किया क्योंकि उन्हें अपने दैनिक जीवन में निरंकुश शासन के दमन का सामना करना पड़ता था। सबसे पहले विचार इन रियासतों में राष्ट्रवादियों के द्वारा पहुँचे जिनमें से कुछ ब्रिटिश भारत में आतंकवादी घोषित होने के उपरान्त इन रियासतों में शरण ढूंढ़ रहे थे। लेकिन एक बार जब इस राष्ट्रीय आंदोलन ने व्यापक स्वरूप धारण कर लिया तो रियासतों के लोगों पर इसका प्रभाव अधिक हो गया। दरअसल, इन रियासतों में सर्वप्रथम स्थानीय स्तर के जन संगठन 1920 से लेकर 1922 तक चलने वाले असहयोग तथा ख़िलाफ़त आंदोलन के प्रभाव में अस्तित्व में आये।

32.3 आरंभिक राजनीतिक संगठन

सर्वप्रथम हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, काठियावाड़ की रियासतें, दकनी रियासतें, जामनगर, इन्दौर तथा नवानगर में प्रजा मंडलों की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया से उभरने वाले मुख्य नेता बलवंत राय मेहता, माणिकलाल कोठारी तथा सी० आर० अभ्यंकर आदि थे। इन्हीं नेताओं की पहल पर 1927 में पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर इन रियासतों की जनता एकत्रित हुई और आगे चलकर अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थापना हुई। इस सम्मेलन के पहले अधिवेशन में ही लगभग 700 राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने हिस्सा लिया।

32.4 कांग्रेस की नीति

1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने उस प्रस्ताव के ज़रिए जिसमें शासकों से पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए आग्रह किया गया था, भारतीय रियासतों के प्रति अपनी नीति की घोषणा कर दी थी। भारतीय रियासतों में राजनीतिक आंदोलन अथवा संघर्ष चलाने के प्रश्न पर कांग्रेस की नीति काफ़ी जटिल थी। यद्यपि रियासतों में रह रहे व्यक्तियों को कांग्रेस का सदस्य होने की स्वतंत्रता थी और उसके द्वारा चलाये गये आंदोलनों में वे भाग ले सकते थे। लेकिन कांग्रेस के नाम पर रियासतों में वे राजनीतिक गतिविधियां आरंभ नहीं कर सकते थे। वे केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता अथवा स्थानीय राजनीतिक संगठनों जैसे प्रजा मंडलों आदि के सदस्य के रूप में ही ऐसा कर सकते थे। कांग्रेस के इस मत का स्पष्ट प्रत्यक्ष कारण यह था कि ये रियासतें वैधानिक दृष्टि से अपना अस्तित्व रखती थीं। रियासतों की राजनीतिक परिस्थितियों में बहुत अधिक भिन्नताएं थीं और इसी तरह ब्रिटिश भारत तथा इन रियासतों के बीच बहुत भिन्नताएं थीं। अतः कांग्रेस जैसी संस्था जो कि अपनी

राजनैतिक तथा संघर्ष पद्धति, ब्रिटिश भारत की परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित करती थी, उस आरंभिक चरण में रियासतों के राजनीतिक आंदोलनों से सीधे सम्बद्ध होने की स्थिति में नहीं थी। इसके अतिरिक्त रियासती जनता के लिए यह उचित नहीं था कि अपनी मांगें स्वीकार करवाने के लिए ब्रिटिश भारत में अधिक विकसित आंदोलनों पर निर्भर करे। आवश्यकता इस बात की थी कि वे स्वयं अपनी शक्ति बढ़ाएं, अपनी राजनीतिक चेतना विकसित करें और अपनी विशिष्ट मांगों के लिए संघर्ष क्षमता का प्रदर्शन करें। इन सीमाओं के अंतर्गत ही कांग्रेस और कांग्रेस के कार्यकर्ता रियासतों के आंदोलनों को विभिन्न तरीक़ों से सहयोग देते रहे। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में रियासतों के संदर्भ में संगठन की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने बड़े ज़ोरदार ढंग से कहा कि "भारतीय रियासतें शेष भारत से कटकर नहीं रह सकतीं इन रियासतों के भविष्य निर्धारित करने का अधिकार इन रियासतों के निवासियों को ही है।"

यद्यपि इन रियासतों में राजनीतिक जागरूकता और राजनीतिक प्रतिरोध 1920 तथा 1930 के दशक में ज़ोर पकड़ने लगे थे लेकिन वास्तविक आंदोलन का प्रारम्भ 1930 के उत्तरार्ध में ही हुआ। इसके दो परस्पर संबंधित कारण थे : पहला 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत प्रस्तावित संघीय योजना तथा दूसरा था 1937 में ब्रिटिश भारत के अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा सरकार बनाया जाना।

32.4.1 संघीय योजना

संघीय योजना के अनुसार, भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत से सीधे संवैधानिक संबंध के अंतर्गत लाया जाना था जो कि मौजूदा स्थिति से पृथक था जिसमें कि वे ब्रिटिश साम्राज्यों से सीधे जुड़े थे। यह संघीय भारतीय विधायिका की स्थापना से प्राप्त किया जाना था जिसमें ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों दोनों के ही प्रतिनिधि शामिल होते। इस विधानमंडल में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि सामान्यतः जनता द्वारा चुने जायेंगे, जबकि रियासतों के प्रतिनिधि जो कि कुल सदस्यों की संख्या का एक तिहाई हिस्सा थे, इन रियासतों के शासकों द्वारा मनोनीत किये गये थे। इस पूरी योजना का उद्देश्य रियासतों के मनोनीत प्रतिनिधियों को ठोस कठपुतली के रूप में इस्तेमाल करके ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्तिहीन बनाना था। इसीलिए सभी राष्ट्रवादियों ने मिलकर संघीय योजना का विरोध किया और मांग की कि रियासतों के प्रतिनिधि भी मनोनीत किये जाने के बजाए जनता द्वारा निर्वाचित किये जाएं। स्वाभाविक रूप से इसके कारण भारतीय रियासतों में उत्तरदायी सरकार की मांग की महत्ता को महसूस किया गया था क्योंकि जब तक रियासतों में निर्वाचन के सिद्धांत लागू न हों तब तक उन्हें संघीय स्तर पर लागू नहीं किया जा सकता।

32.4.2 कांग्रेस मंत्रिमंडल

अनेक प्रांतों में कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल के गठन ने रियासतों में आंदोलनों को प्रेरणा देने का कार्य किया। ब्रिटिश भारत के कई प्रांतों में कांग्रेस के सत्ता में आने से रियासतों की जनता के अन्दर विश्वास की भावनाएं और आकांक्षाएं जगा दीं। इस परिस्थिति ने शासकों पर दबाव डालना शुरू किया क्योंकि कांग्रेस संगठन अब केवल एक विरोधी आंदोलन नहीं रह गया था बल्कि एक ऐसा राजनीतिक दल भी था जो कि सत्ता में था। उनके लिए यह परिस्थिति उस भविष्य का संकेत बन गयी थी जिससे उनको अपने क्षेत्र में जूझना था।

32.5 नया चरण

इस प्रकार रियासतों में 1938-39 के वर्षों में आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। कई रियासतों में प्रजा मंडल बन गये और राजकोट, ट्रैवनकोर, मैसूर, हैदराबाद, पटियाला, जयपुर, कश्मीर और उड़ीसा की रियासतों में संघर्ष भड़क उठे।

HARIJAN

Dec. 3 1938

STATES AND THE PEOPLE

(*By M. K. Gandhi*)

The almost simultaneous awakening in the various states is a very significant event in the national struggle for independence. It will be wrong to think that such awakening can be due to the instigation of one person or a body of persons or any organization. It is just possible that the Haripura resolution of the Congress put the people of the states on their mettle and they realized as never before that their salvation depended upon their own labours. But above all it is the time spirit that has brought about the awakening. It is to be hoped that the Princes and their advisers will recognize it and meet the legitimate aspirations of the people. There is no half-way house between total extinction of the states and the Princes making their people responsible for the administration of their states and themselves becoming trustees for the people, taking an earned commission for their labours.

I hope, therefore, the rumour is not true that the British Government are likely, at the instance of some Princes or their Dewans, to announce a change in the policy recently enunciated by Earl Winterton, about the ability of the Princes to grant responsible government to their people. If any of them have asked the British Government to reverse the policy, they have undoubtedly done a disservice to themseleves. And if the British Government respond to the unworthy wish, they will precipitate a first class crisis whose magnitude it is difficult to foretell. I must refuse to believe that the British Government can commit such a blunder. Earl Winterton's announcement was but an endorsement of past practice. They are not known to have ever interfered with the states giving powers to their people, however wide they might be.

I go a step further. Even as the British Government, as the Paramount Power, are bound to protect the Princes against harm from outside or within, they are equally or *a fortiori* bound to ensure just rule on the part of the Princes. Hence it is their bounden duty, when they supply the police or the military to any state, to see that there is a proper emergency justifying the request and that the military or the police will be used with becoming restraint. From Dhenkanal have come to me stories of fiendish cruelty exercised by the state myrmidons under the shadow of the police supplied by the Paramount Power. I asked for evidence in support of some of the unnameable cruelities. And I have enough to inspire belief.

Indeed, it is a question whether responsible ministers in the provinces have not a moral responsibility in respect of the people of the states in their respective provinces. Under the constitution, the ministers have no power over them. The Governor is the agent of the Viceroy who is the representative of the Paramount Power. But the ministers in autonomous provinces have surely a moral responsibility regarding what happens in the states. So long as the states and the people are satisfied, ministers have no worry. But have they none if there is, say, virulent epidemic in the states which, if neglected, may easily overtake the province in which they are situated? Have they none when there is a moral epidemic which seems to be raging in Dhenkanal?

I understand that the persecuted people are taking refuge in British Orissa. Can the ministers refuse them shelter? How many can they take charge of? Whatever happens in these states affects for better or for worse the province as a whole. I do believe, therefore, that the ministers by reason of the heavy responsibility resting on their shoulders have the moral right, within strict limits, to assert themselves for the sake of internal peace and decency. They cannot look on with unconcern while the people of the states —an arbitrary creation of the Paramount Power— are being ground to dust as they in Dhenkanal are reported to be.

One reads in the papers that some concessions have been given to the people of Dhenkanal. I do not know whether the report is true and whether the relief answers the purpose for which the people of Dhenkanal are fighting and suffering. It is, however, irrelevant to the issue raised by me. I feel that the ministers in the Provinces are morally bound to take notice of gross misrule in the states within their borders and to tender advice to the Paramount Power as to what, in their opinion, should be done. The Paramount Power, if it is to enjoy friendly relations, with the provincial ministers, is bound to give sympathetic ear to their advice.

There is one other matter which demands the urgent attention of the states and their advisers. They fight shy of the very name Congress. They regard Congressmen as outsiders, foreigners and what not. They may be all that in law. But man-made law, if it is in conflict with the natural law, becomes a dead letter when the latter operates in full force. The people of the states look up to the Congress in all matters affecting their interest. Many of them are members of the Congress. Some like Shri Jamnalalji hold high offices in the Congress organization. In the eye of the Congress there is no distinction between members from the states and from India called British. It is surely detrimental to the interests of the states to ignore the Congress or Congressmen especially when it or they seek to render friendly assistance. They must recognize

चित्र 21. देशी रियासतों में जन आन्दोलन पर हरिजन में गाँधीजी का लेख

32.5.1 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन

इस नयी परिस्थिति में रियासतों के अंतर्गत आंदोलनों के प्रति कांग्रेस की नीति में स्पष्ट परिवर्तन आये। उग्रपंथी और वामपंथी पहले से ही रियासतों के आंदोलनों के प्रति स्पष्ट पहचान की मांग कर रहे थे लेकिन कांग्रेस की सोच पर निर्णायक प्रभाव रियासतों के जनवादी आंदोलनों ने डाला। यह 25 जनवरी, 1939 को गांधी जी के टाइम्स ऑफ़ इण्डिया को दिए गये एक इण्टरव्यू के निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है:

> "मेरी दृष्टि में ऐसे समय में जबकि रियासतों की जनता जागरूक नहीं थी, हस्तक्षेप न करने की कांग्रेस की नीति कूटनीति का बेहतरीन उदाहरण थी। किंतु ऐसे समय में जबकि रियासत के लोगों में व्यापक जागरूकता आ चुकी है और लोग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कष्टों के एक लम्बे दौर को झेलने के लिए तैयार हैं, वह नीति कायरता की प्रतीक होगी। जिस क्षण उसमें जागरूकता आई उस क्षण से क़ानूनी, संवैधानिक और बनावटी सीमाएं टूट गयीं।"

मार्च, 1939 में अपने त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें गांधी जी के उक्त विचारों को सम्मिलित किया गया:

> "रियासत की जनता के बीच उभर रही महान जागरूकता कांग्रेस में ढील ला देगी अथवा उन रुकावटों को पूरी तरह ख़त्म कर देगी जो कि कांग्रेस ने स्वयं पर लगा रखी हैं। परिणामतः रियासतों की जनता के साथ कांग्रेस की पहचान निरंतर बढ़ती ही जायेगी।"

1939 में अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन के लुधियाना अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष चुने जाने से आंदोलन को और भी प्रोत्साहन मिला और यह ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के आंदोलनों की एकता का प्रतीक बन गया।

32.5.2 रियासतों में भारत छोड़ो आंदोलन

1939 में दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ होते ही परिस्थिति में स्पष्ट परिवर्तन आये। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा दे दिया और भारत में अंग्रेज़ी सरकार तथा रियासतों ने और भी दमनकारी रूप ले लिया। आंदोलन का एक ठहराव की स्थिति आ गयी जो अंततः 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के आरंभ होने से ही टूटी। पहली बार कांग्रेस ने रियासती जनता का स्वतंत्रता के लिए अखिल भारतीय संघर्ष में पूरी तरह से शामिल होने का आह्वान किया। कांग्रेस ने उत्तरदायी सरकार की अपनी मांग में भारत की स्वतंत्रता और रियासतों को भारतीय राष्ट्र में उसके अभिन्न अंग के रूप में शामिल किये जाने की मांग जोड़ दी। रियासती जनता के संघर्षों को औपचारिक रूप से ब्रिटिश भारत की जनता के संघर्षों के साथ जोड़ लिया गया।

32.5.3 एकीकरण की प्रक्रिया

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर सत्ता के ब्रिटिश नियंत्रण को भारतीय नियंत्रण में हस्तांतरित करने की बातचीत का दौर शुरू हुआ। ऐसी परिस्थिति में भारतीय रियासतों के भविष्य का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया। अंग्रेज़ सरकार का यह मानना था कि उनके भारत छोड़ने के बाद उनकी सर्वोपरि सत्ता ख़त्म हो जाएगी और भारतीय रियासतें वैधानिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाएगीं। इससे उप महाद्वीप के कई टुकड़ों में बंटने की स्थिति पैदा हो सकती थी। राष्ट्रीय नेतृत्व, विशेषकर सरदार पटेल ने इस परिस्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा कूटनीतिक दबावों एवं जनवादी आंदोलनों के संयोजन द्वारा अधिकांश रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने पर राज़ी कर लिया। अधिकतर बुद्धिमान शासकों ने स्वयं ही इस तथ्य को समझ लिया कि भिन्न अस्तित्व के रूप मे उनके क्षेत्रों की स्वतंत्रता यथार्थवादी विकल्प नहीं था लेकिन ट्रैवनकोर, जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर जैसी रियासतें अंतिम समय तक भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करती रहीं। अंततः केवल हैदराबाद ही ऐसी रियासत बची जो स्वतंत्र बने रहने के लिए अंत तक गंभीर प्रयास करती रही।

PAGE 2?7

FREE PRESS JOURNAL
STATES PEOPLES SUPPLEMENT

BOMBAY, SATURDAY, OCTOBER 18, 1947.

IN A MAZE

Despairing of the hope that Lord Mountbatten's advice to the Indian Princes will be followed, the Government of India and the A.I.S.P.C. are drifting, unable either to see the overall picture in its true perspective or lay down a uniform plan as to how the difficulties arising out of the June 3 Plan are to be surmounted.

The Union Government seeks to judge each state on individual merit.

The A.I.S.P.C. through its spokesman and now ex-President can see merit only in those actions of the States that are favourable to the Indian Union.

Thus Sardar Vallabhbhai Patel cannot see the necessity of holding a plebiscite in Kashmir although he thinks that a plebiscite in Junagadh is essential.

Thus Dr. Pattabhi Sitaramayya cannot see why Kashmir should join Pakistan but he wants Hyderabad and Junagadh to join the Indian Union on the grounds that the majority population is non-Muslim.

The Ex-Acting President even goes so far as to suggest that Kashmir and Hyderabad should exchange Rulers after which all difficulties would, apparently vanish.

Both representatives are inclined to lay emphasis on the Rulers rather than on the People.

Neither is able to get over the lapse of Paramountcy although one signed away all control over the Princes on the morning of June 3 and the other acquiesced without a murmur.

चित्र 22. रियासतों में जन आन्दोलन पर फ्री प्रेस जरनल का सम्पादकीय (18.10.1947)

बोध प्रश्न 1

1 भारतीय रियासतों की जनता पर राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभिक प्रभाव क्या रहा?

....

....

....

....

....

2 भारतीय रियासतों के जनवादी आंदोलनों के प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति क्या थी?

....

....

....

....

....

3 संघीय योजना पर पांच पंक्तियां लिखिये।

....

....

....

....

....

4 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगाएं।

i) भारतीय रियासतों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों पर अंग्रेज़ों का अप्रत्यक्ष नियंत्रण था। ☐

ii) संघीय योजना को राष्ट्रवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त था। ☐

iii) 1930 के दशक में देशी रियायतों के आंदोलन में तीव्रता आयी। ☐

दो रियासतों की केस स्टडी :

अब हम दो भारतीय रियासतों में आंदोलन के स्वरूप पर गहराई से दृष्टि डालेंगे। हमने सभी रियासतों के आंदोलनों का संक्षिप्त में सारांश प्रस्तुत करने के बजाय प्रतिनिधि रियासतों के आंदोलनों को विस्तार में प्रस्तुत करने की पद्धति इसलिए अपनायी है क्योंकि इस प्रकार की पद्धति से भारतीय रियासतों में बुनियादी स्तर पर राजनीतिक गतिविधियों और राजनीतिक जागरूकता को उभारने वाली विभिन्न शक्तियों के जटिल स्वरूप को समझने में आसानी होगी। हमने जो रियासतें चुनी हैं वे न केवल आकार की दृष्टि से बल्कि कुछ अन्य कारणों से भी हैदराबाद (सबसे बड़ी रियासत थी) तथा राजकोट (सबसे छोटी रियासतों में से एक) प्रतिनिधि रियासतें हैं। हैदराबाद का शासन (निज़ाम) एक मुस्लिम के हाथ में था तथा राजकोट का शासन एक हिन्दू के हाथ में। राजकोट में गांधीवादी राजनीतिक कार्यकर्ता नेतृत्व कर रहे थे और हैदराबाद में कम्युनिस्ट, सामन्ती शासकों के विरुद्ध जनवादी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

32.6 राजकोट में जन आंदोलन

राजकोट की रियासत असंख्य छोटी-छोटी रियासतों में से एक थी जो गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में स्थित थी। इसकी कुल आबादी केवल 75,000 थी। तथापि राजकोट काफ़ी महत्वपूर्ण रियासत थी क्योंकि राजकोट शहर पश्चिमी भारतीय रियासती एजेंसी (Western India States Agency) का मुख्यालय था, जहां ब्रिटिश राजनीतिक एजेंसी क्षेत्र की सभी छोटी रियासतों की निगरानी का कार्य करती थी।

32.6.1 लखाजीराज का शासन

भारतीय रियासतों में राजकोट ऐसी पहली रियासत थी जहां सरकार में जनता की हिस्सेदारी की शुरुआत हुई। यह जन सहभागिता राजकोट के ठाकुर साहब, लखाजीराज के प्रबुद्ध विचारों के कारण ही आरंभ हो सकी । लखाजीराज ने 1930 तक कुल बीस वर्षों के लिए रियासत पर शासन किया। 1923 में उन्होंने राजकोट प्रतिनिधि सभा की शुरुआत की। यह सभा 90 चुने हुए सदस्यों की प्रतिनिधि विधानसभा थी। जिनके सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता था। ठाकुर साहब के पास "वीटो" का अधिकार सुरक्षित था लेकिन

लखाजीराज ने इस अधिकार का प्रयोग बिरले ही किया। इस प्रजा प्रतिनिधि सभा के पास काफ़ी अधिकार थे। लखाजीराज ने रियासत में औद्योगिक और शैक्षणिक उन्नति को काफ़ी प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार प्रबुद्ध शासक ने राष्ट्रवादी राजनीतिक गतिविधियों को विभिन्न तरीक़ों से प्रोत्साहित किया। 1921 में उन्होंने राजकोट के अन्दर प्रथम काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के आयोजन की अनुमति ली जिसकी अध्यक्षता सरदार पटेल के भाई विठ्ठल भाई पटेल ने की जो कि बाद में केन्द्रीय विधान सभा के प्रथम भारतीय अध्यक्ष भी हुए। लखाजीराज गांधी जी के बड़े प्रशंसक थे और राजकोट के इस सपूत पर गर्व करते थे। वे अक्सर गांधी जी को अपने "दरबार" में बुलाते और उन्हें सिंहासन पर बिठा कर स्वयं "दरबार" में बैठते। जवाहरलाल नेहरू का रियासत के एक दौरे पर उन्होंने जन स्वागत किया। लखाजीराज काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के अधिवेशनों में भी शामिल हुए। अंग्रेज़ों की अवज्ञा में खादी पहनी और राष्ट्रीय स्कूल के लिए भूमि दान की, यह स्कूल बाद में राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

32.6.2 निरंकुशता की वापसी

लखाजीराज के ये प्रगतिवादी कार्य अधिक दिनों तक न चल सके। 1930 में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र धर्मेन्द्र सिंह जी ने शासन संभाला और एक शासक के रूप में अपने पिता के बिल्कुल विपरीत विचारों वाला सिद्ध हुआ। धर्मेन्द्र सिंह जी की रुचि केवल भोग विलास में ही थी और इस सब में उसे धूर्त दीवान वीरावाला से भी काफ़ी प्रोत्साहन मिला जिसने सत्ता की सारी शक्ति अपने हाथ में केन्द्रित करने के लिए इस मौके का फ़ायदा उठाया। रियासत का सारा धन फ़िजूल खर्ची में बहाया गया और एक समय के बाद वहां की वित्तीय स्थिति ऐसी हो गयी कि राजस्व प्राप्त करने के लिए चावल, माचिस, चीनी और दाल के विक्रय का अधिकार राजस्व बढ़ाने के लिए निजी व्यापारियों को दे दिया गया। कर बढ़ा दिये गये, कीमतें काफ़ी बढ़ गईं और जन प्रतिनिधि सभा समाप्त हो गयी। इन तमाम कारणों, तथा विशेषकर लखाजीराज के शासन और वर्तमान शासन के बीच इतने बड़े अन्तर के कारण लोगों के बीच असंतोष और अप्रसन्नता व्याप्त हो गयी।

32.6.3 विरोध की शुरुआत

काठियावाड़ क्षेत्र में कई वर्षों से सक्रिय विभिन्न राजनीतिक गुटों ने संघर्ष के लिए आधार भी तैयार कर रखा था। लेकिन इन वर्षों में जिस समूह ने नेतृत्वकारी स्थिति प्राप्त की उसके सदस्य गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ता थे और उनके मुख्य नेता यू० एन० ढेबार थे।

1936 में एक गांधीवादी कार्यकर्ता जेठालाल जोशी द्वारा संगठित मज़दूर यूनियन के तत्वाधान में रियासती सूती मिल में 800 मज़दूरों ने हड़ताल की, हड़ताल 21 दिन चली और मज़दूरों की काम करने की बेहतर परिस्थितियों की मांग को दरबार ने स्वीकार किया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर मार्च, 1937 में जेठालाल जोशी तथा यू० एन० ढेबार ने काठियावाड़ राजकीय परिषद (राजनीतिक कांफ्रेंस) की मीटिंग आयोजित की जो कि आठ वर्षों के दौरान पहली बार हुई थी। इस कांफ्रेंस में भाग लेने वाले पंद्रह हज़ार लोगों ने उत्तरदायी सरकार की मांग की और करों को घटाने तथा रियासती खर्चों में कमी की भी मांग की।

रियासत के शासक ने न तो परिषद से बातचीत आरंभ की और न ही मांगें स्वीकार कीं। अत: परिषद ने अगस्त, 1938 में जुआ खेलने के विरोध में, जिसके अधिकार भी गोकुलाष्टमी मेले को बेच दिये गये थे, संघर्ष छेड़ दिया। प्रशासन की दमन की योजना थी, विरोधी प्रदर्शनकारियों पर पहले ऐजेंसी की पुलिस ने और फिर रियासत की पुलिस ने लाठियां बरसाईं। इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त देखने में आयी। पूर्ण हड़ताल की घोषणा कर दी गयी और 5 सितम्बर को सरदार पटेल की अध्यक्षता में परिषद का अधिवेशन हुआ। पटेल दीवान वीरावाला से भी मिले और जनता की मांगें प्रस्तुत की, जिसमें उत्तरदायी सरकार के लिए प्रस्ताव तैयार करने की एक कमेटी, प्रतिनिधि सभा के लिए नये चुनाव, भू-राजस्व में 15 प्रतिशत की कमी, सभी प्रकार की इज़ारेदारी समाप्त करना तथा सरकारी खज़ाने पर शासक के अधिकार को सीमित करने की मांगें शामिल थीं। दरबार ने इन मांगों में रुचि दिखाने के बजाए ब्रिटिश रेज़ीडेंट से दीवान के रूप में एक अंग्रेज़ अफसर नियुक्त करने का अनुरोध

किया जिससे कि आंदोलन के प्रभावपूर्ण तरीके से निपटा जा सके ब्रिटिश रेजीडेंट ने कैडेल (Cadell) को दीवान बना कर भेज दिया। दीवान वीरावाला जिसने सारी योजना तैयार की थी, स्वयं सत्ता का निजी सलाहकार बन गया तथा अप्रत्यक्ष रूप में सक्रिय बना रहा।

32.6.4 सत्याग्रह

प्रशासन का सख्त रवैया देखते हुए प्रतिरोध को और तेज़ कर दिया गया और अंततः व्यापक पैमाने पर सत्याग्रह में परिवर्तित हो गया। सूती मिल में मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। छात्रों ने भी हड़ताल आरंभ कर दी। सारा माल चाहे वह रियासत द्वारा उत्पादित हो या इजारेदारी के अंतर्गत बेचे जाने वाला माल दोनों का बहिष्कार किया गया। इसमें कपड़ा और बिजली भी शामिल थे। भू-राजस्व अदा नहीं किया गया तथा स्टेट बैंक में जमा राशि वापस ली जाने लगी। संक्षेप में, रियासत की आय के सारे स्रोत बन्द हो गये। बम्बई ब्रिटिश गुजरात तथा राजकोट के बाहर काठियावाड़ के अन्य क्षेत्रों से कार्यकर्ता राजकोट में इकट्ठे होने लगे। आंदोलन का संगठन बहुत विकसित था। प्रत्येक नेता की गिरफ़्तारी के बाद उसकी जगह कोई दूसरा ले लेता था और इसके लिए पूर्व निर्धारित गुप्त शृंखला का सहारा लिया गया था। जिसके अनुसार कार्यकर्ता अपने राजकोट पहुँचने की तारीख़ तथा प्रबन्ध की सूचना सांकेतिक संख्याओं द्वारा अख़बारों में प्रकाशित करा देते थे। यद्यपि सरदार पटेल राजकोट मे हर समय उपस्थित नहीं रहते थे लेकिन टेलीफ़ोन पर हर रोज़ शाम के समय सूचना प्राप्त कर लेते थे।

ब्रिटिश सरकार राजकोट में किसी भी ऐसी संभावना से भयभीत थी जिसे कांग्रेस की सफलता कहा जा सके। वे नहीं चाहते थे कि दरबार, प्रतिरोधी आंदोलन के साथ किसी प्रकार का समझौता करे। उन्हें डर था कि इससे आंदोलन और फैल जायेगा तथा कांग्रेस का प्रभाव भी बढ़ जायेगा। लेकिन अत्यधिक सफल सत्याग्रह के पूर्ण दबाव में आकर दरबार ने 26 दिसम्बर,1938 को सरदार पटेल के साथ समझौता किया जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह वापस ले लिया गया और सभी कैदी रिहा कर दिये गये। समझौते का सबसे महत्वपूर्ण भाग वह था जिसमें दरबार ने दस राज्याधिकारियों की समिति नियुक्ति करने का वचन दिया। दरबार को अधिकतम संभावित शक्तियां प्रदान करने के लिए सुधारों की एक योजना तैयार करना इस समिति का काम था। यह भी समझौता था कि समिति के दस सदस्यों में से सात सदस्य सरदार पटेल द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।

अंग्रेज़ सरकार जो मूल रूप से ही समझौते के विरुद्ध थी, अब तुरंत क्रियाशील हो गयी। वाइसरॉय और रियासत के सेक्रेटरी से परामर्श करने के बाद सरदार पटेल द्वारा मनोनीत किए जाने वाले सात सदस्यों की सूची स्वीकार न करने के लिए ठाकुर साहब को बाध्य किया गया। इसके विपरीत ब्रिटिश रेज़ीडेंट की सहायता से एक अन्य सूची इसके स्थान पर तैयार की गयी। सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची अस्वीकार करने के पीछे जो आम कारण बताया गया. काफी महत्वपूर्ण था। इसके अनुसार, सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची इसीलिए स्वीकार नहीं की जा सकती थी क्योंकि यह स्पष्ट रूप में सांप्रदायिक और जातिगत विभाजन का प्रयास था, इस सूची में केवल ब्राह्मण और बनियों के नाम थे तथा राजपूत, मुस्लिम तथा दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं था।

26 जनवरी, 1939 को सत्याग्रह फिर से आरंभ कर दिया गया। शासन ने आंदोलन का दमन करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परंतु इस दमन के विरोध में देश भर से प्रतिक्रियाएं आने लगीं। गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा जो राजकोट में ही पली बढ़ी थी, इससे इतनी अधिक प्रभावित हुई कि अपनी बढ़ती हुई उम्र तथा ख़राब स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए उन्होंने राजकोट जाने का निश्चय कर लिया। उनके वहाँ पहुँचने पर उन्हें तथा उनकी सहयोगी सरदार पटेल की बेटी मनीबेन को राजकोट शहर से बाहर एक गांव में रोक लिया गया। इसके बाद गांधी जी ने स्वयं ही राजकोट जाने का निश्चय किया। दरबार द्वारा औपचारिक समझौते का उल्लंघन किए जाने के मुद्दे को पहले उन्होंने काफ़ी गंभीरता से लिया। रियासत के साथ तथा ठाकुर साहब के परिवार के साथ अपने और अपने परिवार के नज़दीकी संबंधों को देखते हुए उन्होंने निजी रूप में हस्तक्षेप करना अपना दायित्व समझा।

दरबार को निःसंदेह अंग्रेज़ों द्वारा भड़काया गया और अपने फैसले पर अड़ा रहा अंततः

गांधीजी ने घोषणा की कि यदि तीन मार्च तक दरबार ने इस समझौते का सम्मान नहीं किया तो वे अनिश्चितकालीन अनशन पर चले जायेंगे। दरबार की ओर से कोई आश्वासन नहीं दिया गया और इस प्रकार अनशन की शुरुआत हो गयी।

32.6.5 गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप

अपेक्षा के अनुरूप ही गांधीजी का अनशन तुरंत देशव्यापी विरोध का चिह्न बन गया। टेलिग्राम के द्वारा वाइसरॉय पर हस्तक्षेप करने के लिए दबाव डाला जाने लगा, कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा देने की धमकियां दी। हड़तालें शुरू हो गयीं तथा विधानमंडल स्थगित कर दिये गये। गांधीजी ने स्वयं वाइसरॉय से अनुरोध किया कि वे हस्तक्षेप करके ठाकुर साहब को समझौते पर जमे रहने के लिए राज़ी करें। सात मार्च को वाइसरॉय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस गॅायर को मध्यस्थ बनने और यह निर्णय करने के लिए आदेश दिया कि क्या सचमुच ठाकुर ने समझौते का उल्लंघन किया है। इसके बाद ही गांधी जी ने अपना अनशन तोड़ा।

मुख्य न्यायाधीश ने 3 अप्रैल, 1939 को दिये गये अपने निर्णय में सरदार पटेल के पक्ष का समर्थन किया लेकिन वीरावाला के उकसाने पर दरबार सांप्रदायिकता और जातिवाद को प्रोत्साहन देता रहा तथा मुस्लिम ..र दलित वर्गों को भड़काते हुए इन्हें अपनी मांगें प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करता रहा और उनका इस तरह इस्तेमाल करता रहा कि वे समझौते को मानने से इंकार कर दें। अचानक परिस्थिति बिगड़ने लगी, विशेषकर जिन्ना और अम्बेडकर द्वारा मुस्लिमों और दलित वर्गों के लिए भिन्न प्रतिनिधित्व की मांग के साथ स्थिति और भी बदतर हो गयी तथा गांधी जी की प्रार्थना सभाओं पर विरोधी प्रदर्शन होने लगे। चूँकि कांग्रेस की सफलता से अंग्रेज़ सरकार को फ़ायदा तो कुछ होना नहीं था, केवल उसे नुकसान ही हो सकता था, उसने किसी भी रूप में अपना प्रभाव इस्तेमाल करने से इंकार कर दिया।

यहां पर गांधी जी ने स्वयं को परिस्थिति से अलग कर लिया तथा यह घोषणा की कि वे ठाकुर साहब को समझौते से मुक्त कर रहे हैं। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश तथा वाइसरॉय से उनका समय बर्बाद करने के लिए क्षमा मांगी। उन्होंने अपने विरोधियों से भी क्षमा मांगी और ब्रिटिश भारत में वापस आ गये। अपने विरोधियों का हृदय परिवर्तन करने के प्रयास में उन्हें जो असफलता मिली, उसके कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने महसूस किया कि दरबार पर दबाव डालने के लिए सर्वोपरि सत्ता के अधिकारों का इस्तेमाल करने का प्रयास करना उचित नहीं था, उन्हें ठाकुर साहब और वीरावाला के हृदय परिवर्तन के लिए कष्ट झेलने की स्वयं की शक्ति पर ही आश्रित होना चाहिए था। गांधी जी के अनुसार, उनके द्वारा अपनायी गयी पद्धति में निहित हिंसा का तत्त्व उनकी असफलता का कारण था।

32.6.6 राजकोट सत्याग्रह के सबक

अपने तमाम उतार चढ़ाव के साथ राजकोट सत्याग्रह ने देशी रियासतों की परिस्थितियों की जटिलता को स्पष्ट कर दिया। इन रियासतों में सर्वोपरि सत्ता अपने हित में रियासतों में हस्तक्षेप के लिए सदैव तैयार रहती थी लेकिन जब कभी भी विपक्ष हस्तक्षेप की मांग करता था तो रियासत की वैध स्वतंत्रता के नाम पर हस्तक्षेप से इंकार कर दिया जाता था। ब्रिटिश भारत में यह बहाना इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था, इसलिए मुकाबला भिन्न तरह का होता था। परिस्थिति की इस भिन्नता के कारण एक ही संघर्ष पद्धति जब ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों की भिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में प्रयोग में लायी जाती थी तो परिणाम भी भिन्न निकलते थे, अतः इन दो क्षेत्रों में आंदोलनों को एक साथ मिलाने के लिए कांग्रेस की इतने अधिक वर्षों तक की झिझक संभवतः तर्क संगत थी।

यहां यह बताना आवश्यक है कि अपनी तमाम प्रत्यक्ष असफलताओं के बावजूद राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह केवल संयोग ही नहीं था कि 1947 में रियासतों के भारतीय संघ में शामिल होने में जिस व्यक्ति ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वह कोई अन्य नहीं, बल्कि राजकोट संघर्ष तथा अन्य भारतीय रियासतों की प्रतिरोधात्मक गतिविधियों के संगठनकर्ता सरदार पटेल ही

HARIJAN

Feb.. 4 1939

RAJKOT

(*By M. K. Gandhi*)

The struggle in Rajkot has a personal touch about it for me. It was the place where I received all my education up to the matriculation examination and where my father was Dewan for many years. My wife feels so much about the sufferings of the people that though she is as old as I am and much less able than myself to brave such hardships as may be attendant upon jail life, she feels she must go to Rajkot. And before this is in print she might have gone there.

But I want to take a detached view of the struggle. Sardar's statement, reproduced elsewhere, is a legal document in the sense that it has not a superfluous word in it and contains nothing that cannot be supported by unimpeachable evidence most of which is based on written records which are attached to it as appendices.

It furnishes evidence of a cold-blooded breach of a solemn covenant entered into between the Rajkot Ruler and his people. And the breach has been committed at the instance and bidding of the British Resident who is directly linked with the Viceroy.

To the covenant a British Dewan was party. His boast was that he represented British authority. He had expected to rule the Ruler. He was therefore no fool to fall into the Sardar's trap. Therefore the covenant was not an extortion from an imbecile ruler. The British Resident detested the Congress and the Sardar for the crime of saving the Thakore Saheb from bankruptcy and, probably, loss of his gadi. The Congress influence he could not brook. And so before the Thakore Saheb could possibly redeem his promise to his people, he made him break it. If the news that the Sardar is receiving from Rajkot is to be believed, the Resident is showing the red claws of the British lion and says in effect to the people: "Your ruler is my creature. I have put him on the gadi and I can depose him. He knew well enough that he had acted against my wishes. I have therefore undone his action in coming to terms with his people. For your dealings with the Congress and the Sardar I shall teach you a lesson that you will not forget for a generation."

Having made the Ruler a virtual prisoner, he has begun a reign of terrorism in Rajkot. Here is what the latest telegram received by the Sardar says: "Becharbhai Jasani and other volunteers arrested. Twentysix volunteers taken at night to a distant place in the Agency limits and brutally beaten. Volunteers in villages are similarly treated. Agency police controlling State agency and searching private houses in civil limits."

The British Resident is repeating the performances of the British officials in 'British India' during the Civil Disobedience days.

I know that if the people of Rajkot can stand all this madness without themselves becoming mad, and meekly but resolutely and bravely suffer the inhumanities heaped upon them, they will come out victorious and, what is more, they will set free the Thakore Saheb. They will prove that they are the real rulers of Rajkot under the paramountcy of the Congress. If, however, they go mad and think of impotent retaliation and resort to acts of violence, their state will be worse than before and the paramountcy of the Congress will be of no effect. The Congress paramountcy avails only those who accept the banner of non-violence, even as the paramountcy of Britain avails only those who subscribe to the doctrine of 'might is right'.

What then is the duty of the Congress when the people of Rajkot have to face not the Ruler and his tiny police but the disciplined hordes of the British Empire?

The first and natural step is for the Congress ministry to make themselves responsible for the safety and honour of the people of Rajkot. It is true that the Government of India Act gives the ministers no power over the States. But they are governors of a mighty province in which Rajkot is but a speck. As such they have rights and duties outside the Government of India Act. And these are much the most important. Supposing that Rajkot became the place of refuge for all the *gundas* that India could produce, supposing further that from there they carried on operations throughout India, the ministers would clearly have the right and it would be their duty to ask the Paramount Power through the British Representative in Bombay to set things right in Rajkot. And it will be the duty of the Paramount Power to do so or to lose the ministers. Every minister in his province is affected by everything that happens in territories within his geographical limit though outside his legal jurisdiction, especially if that thing hurts his sense of decency. Responsible government in those parts may not be the ministers' concern, but if there is plague in those parts or butchery going on, it is very much their concern; or else their rule is a sham and delusion. Thus the ministers in Orissa may sit comfortably in their chairs, if they do not succeed in sending 26,000 refugees of Talcher to their home with an absolute assurance of safety and freedom of speech and social and political intercourse. It is insufferable that the Congress, which is today in alliance with the British Government, should be treated as an enemy and an outsider in the States which are vassals of the British.

This wanton breach, instigated by the British Resident in Rajkot, of the charter of the liberty of its people is a wrong which must be set right at the earliest possible moment. It is like

चित्र 23. राजकोट पर हरिजन में गांधी जी का लेख

थे। राजकोट जैसे संघर्षों ने रियासतों के शासकों के समक्ष जन प्रतिरोध की शक्ति स्पष्ट कर दी थी। जब 1947 में कई शासकों ने विशेष प्रतिरोध के बिना ही भारतीय संघ में शामिल होना स्वीकार कर लिया, तो उसके पीछे यह भी एक बड़ा कारण था।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें।

i) अधिकांश रियासतों के विपरीत राजकोट रियासत ने शासन में जन सहभागिता का सिद्धांत लागू किया था। ☐

ii) राजकोट में राजनीतिक गतिविधि के लिए आरंभिक पहल गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने की। ☐

iii) राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ☐

2 राजकोट सत्याग्रह में गांधी जी की संबद्धता पर पांच पंक्तियां लिखिये।

....

....

....

....

....

32.7 हैदराबाद में जन आंदोलन

इस परिस्थिति मे केवल एक ऐसी रियासत थी जिसने व्याप्त जन प्रतिरोध पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी और वह थी सबसे बड़ी भारतीय रियासत, हैदराबाद की। हैदराबाद का शासन उस्मान अली ख़ान के हाथ में था जो कि 1911 से लेकर 1948 तक हैदराबाद के निज़ाम बने रहे और उन्होंने ही एकीकरण के प्रति सबसे कठोर प्रतिरोध का प्रदर्शन किया। उनका प्रतिरोध अप्रत्याशित नहीं था। वे एक निरंकुश शासक की तरह शासन करने के आदी थे तथा उनकी निजी सम्पदा पूरी रियासत का दस प्रतिशत थी। इस सम्पदा से प्राप्त राजस्व सीधे शासक घराने के खर्चों के लिए पहुँचता था। स्वाभाविक रूप से जनतांत्रिक भारत में एकीकृत होने पर उन्हें केवल नुकसान ही होना था।

32.7.1 निज़ाम का शासन

हैदराबाद की जनता, जिसमें तीन भिन्न भाषायी समूह, मराठी भाषी (28 प्रतिशत) कन्नड़ भाषी (22 प्रतिशत) तथा तेलगू भाषी (50 प्रतिशत) थे। उनके क्रुद्ध होने के कई कारण थे। वे सामंती काश्तकारी संरचना द्वारा उत्पीड़ित किये जा रहे थे जिसमें जागीरदार ग़ैर क़ानूनी तरीक़ों से उन पर लगान लगाते थे, मालगुज़ारी की ऊँची दरें वसूल करते थे और उनसे बेगार कराते थे। बहुसंख्यक हिन्दू आबादी पर सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी दमन चक्र चलाया जाता था, उनकी भाषाओं की उपेक्षा करते हुए उर्दू को विभिन्न तरीक़ों से प्रोत्साहन दिया जा रहा था। मुसलमानों में सरकारी नौकरियों में, विशेषकर उच्च स्तर पर उनके अनुपात से अधिक प्राथमिकता दी जाती थी। आर्य समाज जो कि 1920 के बाद से रियासत में काफ़ी प्रभावशाली बन चुका था, बुरी तरह दबा दिया गया। इसके अनुयायी सरकारी अनुमति के बग़ैर धार्मिक गतिविधियां भी आयोजित नहीं कर सकते थे। राजनीतिक क्षेत्र में भी निज़ाम ने "इत्तेहाद-उल-मुस्लिमिन" नामक संस्था के गठन में सहयोग किया जो कि समान धार्मिक आस्था के आधार पर निज़ाम के प्रति निष्ठा पर केन्द्रित थी। इसी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक दमन ने हैदराबाद में जन आंदोलन का आधार तैयार किया।

32.7.2 जागृति की शुरुआत

राजनीतिक जागरण की शुरुआत 1920-22 में असहयोग आंदोलन और खिलाफ़त आंदोलन के साथ हुई। राष्ट्रीय पाठशालाएं खुलीं, चरखे काफ़ी लोकप्रिय हुए। नशाबंदी का प्रचार हुआ तथा गांधी जी और अली बंधुओं के चित्र के बिल्ले बेचे गये। हिन्दू मुस्लिम एकता के जन प्रदर्शन की लोकप्रियता बढ़ रही थी और चूंकि निज़ाम खिलाफ़त आंदोलन का खुले आम विरोध करने में झिझकता था, इसलिए जनसभाओं के रूप में खुले आम राजनीतिक गतिविधियों के आयोजन के लिए खिलाफ़त आंदोलन का प्रभावशाली मंच के रूप में इस्तेमाल किया गया।

इसी के साथ रियासत से मिले हुए ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में हैदराबाद संबंधी अनेक राजनीतिक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में उत्तरदायी सरकार, नागरिक स्वतंत्रता, कर में कमी, बेगारी उन्मूलन तथा धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियां आयोजित करने की स्वतंत्रता ये मुख्य मांगें होती थीं। 1930-32 के सविनय अवज्ञा आंदोलन ने राजनीतिक जागरूकता को बल दिया और हैदराबाद के कई राष्ट्रवादी संघर्ष में भाग लेने के लिए ब्रिटिश भारत आ गये। ये लोग जेल भी गये और वहाँ अन्य क्षेत्रों के राष्ट्रवादियों के साथ घुले मिले। ये लोग एक नये जोश और स्फूर्ति के साथ हैदराबाद लौटे।

इसी दौरान सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी थी। इस प्रक्रिया ने विभिन्न भाषायी सांस्कृतिक क्षेत्रों द्वारा अपने संगठन तैयार करने का रूप लिया। इनमें से सर्वप्रथम आंध्र जन संघम का गठन हुआ। जिसने बाद में आंध्र महासभा का रूप ले लिया। तेलंगाना क्षेत्र के तेलगू भाषी लोगों का यह संगठन स्कूल खोलने, समाचार पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित करने, पुस्तकालय खोलने और रिसर्च सोसाइटी आरंभ करने के माध्यम से तेलगू भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए कार्य कर रहा था। यद्यपि 1940 के पूर्व महासभा ने कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधि आरंभ नहीं की किन्तु निज़ाम प्रशासन ने इसके द्वारा आरंभ किये गये समाचार पत्र, पुस्तकालय तथा स्कूल बन्द करने शुरू किये। 1937 में अन्य दो प्रभावी सांस्कृतिक क्षेत्रों ने भी महाराष्ट्र परिषद तथा कन्नड़ परिषद के नाम से अपने संगठन खड़े किये।

32.7.3 सत्याग्रह

1938 में इन तीनों क्षेत्रों के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने एक जुट होकर हैदराबाद रियासत कांग्रेस के नाम से रियासत व्यापी संगठन आरंभ करने का निश्चय किया। इससे पूर्व कि इस संगठन की वास्तव में स्थापना की जाती, प्रशासन ने संगठन पर इस आधार पर प्रतिबंध लगा दिया कि इसमें मुसलमानों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। बातचीत के सभी प्रयास असफल रहे और इस प्रकार सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया गया।

सत्याग्रह अक्तूबर, 1938 में आरंभ हुआ तथा इसका नेतृत्व एक मराठी भाषी राष्ट्रवादी स्वामी रामानंद तीर्थ ने किया। इनका रहन-सहन गांधीवादी तथा विचारधारा नेहरूवादी थी, इस सत्याग्रह के एक अंग के रूप में रियासत के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले पांच सदस्यों के एक समूह ने स्वयं को रियासती कांग्रेस का सदस्य घोषित करते हुए प्रतिबंधित आदेशों का उल्लंघन किया। सत्याग्रह देखने के लिए भारी संख्या में लोग आते और समर्थन व्यक्त करते। यह सिलसिला हफ्ते में तीन बार दो केन्द्रों, हैदराबाद और औरंगाबाद, में दो महीने तक जारी रहा। साथ ही साथ आर्य समाज और हिन्दू नागरिक स्वतंत्रता यूनियन ने भी आर्य समाज के धार्मिक उत्पीड़न के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया। इस सत्याग्रह के धार्मिक उद्देश्य थे और इसने साम्प्रदायिक रूप लेना शुरू कर दिया। ऐसी परिस्थिति में जनता के बीच दो सत्याग्रहों के प्रति भ्रामक विचार पैदा होने का खतरा था। रियासती प्रशासन भी जनता को भ्रमित करने की दिशा में कार्य कर रहा था।

रियासती कांग्रेस तथा गांधी जी ने स्थिति को भांप लिया। अतः राजनीतिक और धार्मिक मुद्दों का अन्तर बनाये रखने के लिए रियासती कांग्रेस का राजनीतिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

ठीक इसी दौरान विख्यात वंदेमातरम् आन्दोलन भी शुरू हुआ। जिसने बड़े पैमाने पर छात्रों

के बीच जोश को प्रेरित किया। हैदराबाद में यह आंदोलन कालेजों के अन्दर अधिकारियों के विरुद्ध हड़ताल के रूप में शुरू हुआ क्योंकि छात्रों को छात्रावास प्रार्थनाकक्ष में वन्देमातरम् गाने की अनुमति नहीं थी। यह हड़ताल शीघ्र ही पूरी रियासत में फैल गयी। छात्र कालेजों से निष्कासित किये जाने लगे। इनमें से काफ़ी छात्र कांग्रेस द्वारा शासित केंद्रीय प्रांतों में नागपुर विश्वविद्यालय चले गये जहां उन्हें प्रवेश दिया गया। यह आंदोलन काफ़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। क्योंकि इस दौर के कई सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता इन्हीं छात्रों के बीच से उभर कर आये।

32.7.4 द्वितीय विश्व युद्ध

द्वितीय विश्व युद्ध 1939 में शुरू हुआ। रियासती सरकार को इस युद्ध के कारण यह अवसर मिल गया कि वह राजनीतिक सुधारों के किन्हीं प्रश्नों पर कोई भी चर्चा करने से इंकार कर दे। रियासती कांग्रेस अभी भी प्रतिबंधित थी। इसी समय सितंबर, 1940 में स्वयं गांधी जी द्वारा चुने गये छह प्रतिनिधियों और स्वामी जी द्वारा एक और सांकेतिक विरोध का प्रदर्शन किया गया। ये लोग गिरफ़्तार कर लिये गये और दिसम्बर, 1941 तक हिरासत में रहे। गांधी जी इस अवस्था में किसी जन आंदोलन के फिर से आरम्भ होने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि अखिल भारतीय संघर्ष की शुरुआत होनी थी और सभी संघर्ष उसी सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में शुरू किए जाने थे।

रियासती कांग्रेस पर प्रतिबंध के फलस्वरूप राजनीतिक गतिविधियों के मंच के रूप में क्षेत्रीय सांस्कृतिक संगठन उभरे। तेलगु भाषी लोगों की आंध्र महासभा के संबंध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नयी राजनीति से प्रेरित कार्यकर्ता सभा में एकत्रित हुए और उसे नयी शक्ति और जुझारू स्वरूप प्रदान किया। इस समय एक महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि रविनारायण रेड्डी, जो कि महासभा के अन्दर नौजवानों के आमूल परिवर्तनवादी समूह के नेता के रूप में उभर कर सामने आये थे और जिन्होंने 1939 के रियासती कांग्रेस सत्याग्रह में हिस्सा लिया था, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ आकृष्ट हो गये। रविनारायण रेड्डी और बी० चेल्ला रेड्डी नौजवान कार्यकर्ताओं का भारी संख्या में समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हुए। इसका परिणाम यह रहा कि महासभा की राजनीति में आमूल परिवर्तनवाद का पक्ष मज़बूती पकड़ने लगा और किसानों की समस्याएं महासभा का केंद्रीय मुद्दा बन गयीं।

इसी दौरान ''भारत छोड़ो'' का नारा लगाया गया। चूंकि यह आंदोलन इस समय रियासतों में भी प्रसारित किया जाना था अतः गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू दोनों ने अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थायी समिति, जो कि अगस्त, 1942 में बम्बई में आयोजित की गयी थी, को संबोधित किया तथा संघर्ष का आह्वान किया। मुख्य नेताओं की गिरफ़्तारी के कारण कोई संगठित आंदोलन तो आरंभ नहीं हो पाया लेकिन रियासत के सभी भागों से लोगों ने संघर्ष में हिस्सा लिया और जेल गये। महिलाओं के एक दस्ते ने हैदराबाद शहर के अंदर सत्याग्रह किया और इसी संबंध में सरोजिनी नायडू गिरफ़्तार कर ली गयी। प्रतिरोध की एक नयी लहर पूरे वातावरण में फैल गयी।

''भारत छोड़ो'' आंदोलन के प्रभाव का दूसरा पक्ष भी था कि कम्युनिस्ट और ग़ैर कम्युनिस्ट समूहों के बीच जो दरार पड़ गयी थी वह अब और मज़बूत हो गई। दिसम्बर, 1941 में कम्युनिस्ट पार्टी ने ''पीपुल्स वार'' का रास्ता अपनाया जिसने फासीवाद विरोधी युद्ध में ब्रिटेन के समर्थन का आह्वान किया। इस राजनीतिक सोच के कारण कम्युनिस्टों ने भारत छोड़ो आंदोलन को अधिकारिक रूप से समर्थन नहीं दिया और इस प्रकार अन्य राष्ट्रवादियों से स्वयं को अलग कर लिया। चूँकि इस समय भारत में ब्रिटिश सरकार का भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति रवैया बदला हुआ था, इसलिए निज़ाम ने भी कम्युनिस्ट पार्टी पर से प्रतिबंध हटा लिया, और ऐसे समय में जब कि अन्य राष्ट्रवादी जेल में बंद थे, कम्युनिस्ट पार्टी खुले रूप से काम कर सकी। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप 1944 में आंध्र महासभा में फूट पड़ी और ग़ैर कम्युनिस्ट महासभा से अलग होकर अपना नया संगठन बनाने लगे तथा महासभा पूरे तौर पर कम्युनिस्टों के हाथ में आ गयी।

32.7.5 किसान आंदोलन

जैसे ही युद्ध ख़त्म हुआ कम्युनिस्टों ने तुरंत ही अपनी स्थिति का लाभ उठाना शुरू किया।

1945-46 के वर्ष, विशेषतया 1946 का उत्तरार्ध नालगोड़ा ज़िले में और कुछ हद तक वारंगल और खम्मम ज़िले के विभिन्न हिस्सों में शक्तिशाली किसान आंदोलन के विकास का दौर था। किसानों को एकजुट करने के लिए जो मुद्दे उठाये गये वे थे : युद्धकाल में राज्य द्वारा किसानों से वसूली जाने वाली अनाज की लेवी, सरकारी नौकरशाही और जमींदारों द्वारा लिया जाने वाला बेगार और किसानों की ज़मीन पर अवैधानिक कब्ज़ा आदि। परिणामस्वरूप आंध्र महासभा के झंडे तले कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसानों और जमींदारों के गुण्डों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। बाद में किसानों और रियासत के सशस्त्र सैनिकों के बीच भी संघर्ष हुए। इस ज़ोरदार प्रतिरोध की गिरफ़्तारियों, पिटाई और हत्याओं के माध्यम से दमन का भरपूर प्रयास किया गया जिससे कि किसान पस्त हो जाएं लेकिन महासभा, जो कि संघम के नाम से जानी जाती थी, के नेतृत्व में किसानों ने अब तक काफ़ी आत्मविश्वास हासिल कर लिया था।

32.7.6 अंतिम चरण

3 जून, 1947 को वाइसरॉय माउंटबैटन ने घोषणा की कि अंग्रेज़ थोड़े ही समय बाद भारत छोड़ देंगे। इस घोषणा के साथ ही परिस्थिति ने एक नया नाटकीय मोड़ ले लिया। 12 जून, 1947 को निज़ाम ने घोषणा की कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद वे शासक होंगे। स्पष्ट था कि भारतीय संघ में शामिल होने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी।

रियासती कांग्रेस ने अब खुले तौर पर सामने आकर नेतृत्व संभालने का निश्चय किया। कुछ महीनों पूर्व जब एक नया अलोकतांत्रिक संविधान निज़ाम द्वारा लोगों पर थोपा गया तो उसके अंतर्गत रियासत में कराये गये चुनावों का सफलतापूर्वक बहिष्कार करके रियासती कांग्रेस ने लोकप्रियता हासिल कर ली थी। निज़ाम के भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करने पर कांग्रेस ने 16 से 18 जून तक अपना पहला खुला अधिवेशन आयोजित किया और भारतीय संघ में शामिल होने तथा उत्तरदायी सरकार की मांग की। दिल्ली में राष्ट्रीय नेतृत्व की सलाह से रियासती नेता भी निज़ाम के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी करने लगे। संघर्ष सत्याग्रह तथा सशस्त्र प्रतिरोध दोनों ही स्तरों पर करने का निश्चय किया गया।

गिरफ़्तारियां टालने के लिए हैदराबाद से बाहर ऐक्शन कमेटी गठित की गयी और रियासत की सीमाओं पर शोलापुर, बेजवाड़ा और गडग में इसके दफ़्तर स्थापित किये गये तथा केन्द्रीय दफ़्तर बम्बई में रखा गया। चंदा भी इकट्ठा किया गया जिसमें जयप्रकाश नारायण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंदोलन शुरू करने के लिए 7 अगस्त, 1947 का दिन तय किया गया और इसे "भारतीय संघ दिवस" में शामिल होने के रूप में मनाने का निश्चय किया गया। आंदोलन की शुरुआत शानदार रही। पूरी रियासत में गांवों एवं शहरों में प्रतिबंध के विरोध में सभाएं हुईं और मज़दूर तथा छात्रों ने हड़तालें कीं। लोगों की पिटाई की गयी और गिरफ्तारियां की गयी तथा राष्ट्रीय झण्डा फहराने पर भी प्रतिबंध लगा। इसके बाद इस प्रतिबंध का हर तरह से प्रतिरोध संघर्ष का मुख्य मुद्दा बन गया। छात्रों और महिलाओं ने इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार ने दमन का कुचक्र और तेज़ कर दिया और 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर स्वामी जी तथा उनके सहयोगी गिरफ़्तार कर लिये गये। नयी प्रगति यह थी कि शासन द्वारा खुले आम रज़ाकारों को प्रोत्साहित किया जा रहा था, ये रज़ाकार इत्तेहाद उल मुस्लेमिन के लडाकू स्वयंसेवी थे जो अतिरिक्त सैन्य दस्तों के रूप में कार्य करते थे। रज़ाकारों को शस्त्र दिये गये और उन्हें निहत्थी जनता पर आक्रमण करने के लिए छोड़ दिया गया। उन्होंने विद्रोही गांवों के पास अपने शिविर लगाये और गांवों पर निरंतर सशस्त्र आक्रमण करते रहे। नवम्बर 1947 में निज़ाम ने भारत सरकार के साथ समझौते पर हस्ताक्षर किये लेकिन इससे दमन के कुचक्र में कोई कमी नहीं आयी।

32.7.7 सशस्त्र प्रतिरोध तथा भारतीय सेना द्वारा हस्तक्षेप

आंदोलन ने अब सशस्त्र प्रतिरोध का भिन्न रूप ले लिया। रियासती कांग्रेस ने रियासत की सीमाओं पर शिविर लगाये तथा कस्टम चौकियों, पुलिस स्टेशनों तथा रज़ाकारों के शिविरों पर हमले करने शुरू कर दिये। लेकिन रियासत के अन्दर विशेषकर तेलंगाना के ज़िलों नालगोड़ा, वारंगल और खम्मम ज़िलों में सशस्त्र प्रतिरोध का नेतृत्व कम्युनिस्टों के हाथ में

रहा। उन्होंने किसानों को "दलम्" में संगठित किया और रज़ाकारों पर आक्रमण करने के लिए उन्हें हथियारों के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया। अनेक क्षेत्रों में उन्होंने ज़मींदारों पर भी आक्रमण किया। कुछ लोगों को मार डाला तथा अनेक लोगों को शहरों की ओर खदेड़ कर उनकी अनाधिकृत भूमि को ज़मीन के मालिकों तथा उन लोगों के बीच बांट दिया जिनके पास थोड़ी अथवा बिल्कुल ज़मीन नहीं थी।

13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सेना द्वारा हैदराबाद पर आक्रमण करके निज़ाम को आत्म-समर्पण कराने तथा रियासत को भारतीय संघ में शामिल करने के साथ नये चरण का आरंभ हुआ। जनता ने भारतीय सेना का स्वागत मुक्ति सेना के रूप में किया, इसमें किसान भी शामिल थे चारों ओर बड़ा उल्लास था तथा बड़े उत्साह और स्वतंत्रता की अनुभूति से राष्ट्रीय झंडा फहराया गया।

बोध प्रश्न 3

1 हैदराबाद की रियासत में प्रचलित उत्पीड़न के स्वरूप पर पांच पंक्तियाँ लिखिये।

....

....

....

....

....

2 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े और उनके सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें।

i) हैदराबाद की जनता पर असहयोग आंदोलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

ii) हैदराबाद रियासत के छात्रों के राजनीतिकरण में वंदेमातरम् आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई।

iii) भारत छोड़ो आंदोलन ने कम्युनिस्टों और ग़ैर कम्युनिस्टों को एकजुट कर दिया

iv) निज़ाम भारतीय संघ में शामिल नहीं होना चाहते थे।

32.8 सारांश

हैदराबाद और राजकोट की दो रियासतों के संघर्ष का इतिहास देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के बीच समानताओं को उजागर करता है। ज़मींदारी व्यवस्था के अभिशाप : भारी कर, निरक्षरता तथा सामाजिक पिछड़ेपन जैसी आर्थिक और सामाजिक समस्याएं लगभग समान थीं। लेकिन ये समस्याएं भी देशी रियासतों में शासकों के निरंकुश शासन के कारण अपेक्षाकृत अधिक गंभीर थीं। राजनीतिक क्षेत्र में भी रियासतें अधिक पिछड़ी हुई थीं और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा वहां नागरिक स्वतंत्रता तथा उत्तरदायी सरकार की कमी थी।

परिणामस्वरूप, ब्रिटिश भारत की अपेक्षा रियासतों में राजनीतिक जागरूकता तथा राजनीतिक गतिविधियों का स्तर लगभग एक दशक या उससे भी अधिक पीछे था और जब राजनीतिक आंदोलन उभरे भी तो मतभेद और विरोध की खुली अभिव्यक्ति की संभावना बहुत कम थी। सामान्यत: इसके परिणामस्वरूप भूमिगत गतिविधियां आरंभ करने तथा इसके हिंसात्मक स्वरूप ले लेने की दिशा में संभावनाएं प्रबल रहती थीं। ऐसा केवल हैदराबाद में नहीं बल्कि पटियाला, ट्रैवनकोर, और उड़ीसा की रियासतों में भी हुआ। इससे अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा कम्युनिस्टों और अन्य वामपंथी समूहों को अधिक सफलता मिली क्योंकि वे उत्पीड़ित जनता के शक्तिशाली दमन के विरुद्ध संगठित करने में अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा हिंसा का सहारा लेने में कम झिझकते थे। अत: आश्चर्य नहीं कि हैदराबाद, पटियाला और ट्रैवनकोर जैसी रियासतों में, जहां हिंसात्मक कार्यनीति अपनायी

गयी कम्युनिस्टों ने अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय रियासतों में स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से यह भी स्पष्ट होता है कि पूरे देश की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रियासतों के प्रति अपनी नीति में निरंतर परिवर्तन करती रही थी। जैसे-जैसे आंदोलन तेज़ होता गया, कांग्रेस अधिक स्पष्ट और सहासिक कदम उठाने में समर्थ होती गयी और 1942 तक पहुँचते-पहुँचते देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में कोई विशेष फर्क नहीं माना गया। 1947-48 में रियासतों द्वारा भारतीय संघ से अलगाव और स्वतंत्रता की सभी बातों के विरुद्ध कांग्रेस की सुस्पष्ट स्थिति तथा इसके लिए बल प्रयोग तक की तैयारी, देश के अनेक टुकड़ों में विभाजन को रोकने में महत्वपूर्ण कारण थे। इस प्रकार कांग्रेस ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा सुरक्षित रखे गये सामंतशाही के विशालतम अवशेषों को पराजित करने में सफलता अर्जित की।

32.9 शब्दावली

संघीय योजना : गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935 के द्वारा अपनायी गयी ब्रिटिश योजना। इस योजना के द्वारा रियासतों के प्रतिनिधियों को केन्द्रीय विधानमंडल में शामिल करके रियासतों को भारतीय संघ का हिस्सा बनाने का प्रयास किया गया था।
परमसत्ता (सर्वोच्चता) : रियासतों तथा ब्रिटिश सरकार के बीच यह समझौता कि रियासतें अंग्रेज़ों को सर्वोपरि सत्ता के रूप में मान्यता देगी इसके बदले में अंग्रेज़ रियासतों को स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार करेंगे।
प्रतिक्रिया : प्रगति और परिवर्तन का विरोध करना।

32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में रियासतों की जनता का समान्य राजनीतिकरण तथा उनमें प्रजातंत्र तथा नागरिक स्वतंत्रता से संबंधित विचारों के प्रसार का उल्लेख होना चाहिए। देखिए भाग 32.2
2 आप रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीतियों में व्याप्त जटिलताओं का विशेष उल्लेख कर सकते हैं। देखिए भाग 32.4
3 देखिए उपभाग 32.4.1
4 i) √ ii) × iii) √

बोध प्रश्न 2

1 i) √ ii) √ iii) √
2 देखिए उपभाग 32.6.5

बोध प्रश्न 3

1 आप आर्थिक और साथ ही धार्मिक उत्पीड़न की प्रक्रिया का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 32.7.3
2 i) × ii) √ iii) × iv) √